



‘ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्’

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ४२ }

वाराणसी, गुरुवार, ९ अप्रैल, १९५९

{ पच्चीस रुपया वार्षिक

रचनात्मक कार्यकर्ताओं के बीच

राजकोट (सीराष्ट्र) २२-११-५८

हमारे रचनात्मक कार्य क्रान्ति की गंगा बनकर बहें !

गीता के पन्द्रहवें अध्याय में कहा है कि यह संसार-वृक्ष उल्टा है। इसका मूल ऊपर है और शाखाएँ नीचे। हम लोग भी समाज में कई बार देखते हैं कि यहाँ ज्ञान की खोज भी उल्टी ही दिशा में चलती है और कर्मयोग की शुरुआत सीधी दिशा में होती है। ज्ञान की खोज ऊपर से नीचे आती है, तो कर्म की रचना नीचे से ऊपर जाती है।

उल्टी खोज

हमारे रचनात्मक कार्य में भी आरंभ में ज्ञान की खोज हुई और अब स्वराज्य के बाद कर्मयोग का आरंभ हो रहा है। उन दिनों सोचा गया कि जनता में जागृति हुए बिना स्वराज्य असंभव है। इसलिए जन-जागृति को अत्यावश्यक मान उसके मार्गों की खोज चल पड़ी। उससे सर्वप्रथम राष्ट्रीय शिक्षण, स्वदेशी और विदेशी बहिष्कार, ये तीन साधन मिले। वास्तव में स्वदेशी और बहिष्कार एक ही चीज के दो पहलू हैं। एक निषेधात्मक है, तो दूसरा विधिरूप। आध्यात्मिक भाषा में एक ‘वैराग्य’ है, तो दूसरा ‘अभ्यास’। दोनों मिलकर एक ही चीज है। गांधीजी ने इसे ‘शुद्ध स्वदेशी’ नाम दिया और हम लोग उसकी खोज में निकल पड़े। कोचरब-आश्रम में पहले-पहल मील से सूत लाकर ही बुना जाता था। खोज चलती ही रही और एक-एक असुविधा का हल निकलता गया। चर्खे से लेकर हाथ की बनी पूनी तक खोज हुई। फिर भी रूई मील से ही ली जाती थी, जिसमें कचरा अधिक होता था। अतः बाद में यह खोज हुई कि खेत में रूई उगायी जाय और सीधे किसानों से ही अच्छी रूई ली जाय। इस तरह सारी खोजें उल्टी दिशा में होती गयीं और रूई तक पहुँचकर आखिर हम लोगों का खेती से संपर्क हो गया। इसी बीच हमें स्वराज्य मिल गया। उसके बाद जमीन की बात आयी और भूदान, ग्रामदान चल पड़ा। इस विवेचन से यह ध्यान में आ सकता है कि हम लोग किस तरह ‘ऊर्ध्वमूलमधःशाखम्’ तक पहुँचे। भूदान भी जरा ऊपर ही था, सर्वथा मूल तक नहीं पहुँचा था। लेकिन अन्त में जब हम लोग ग्रामदान तक पहुँच गये, तो बिलकुल बुनियाद—नींव ही मिल गयी।

गांधी-सम्प्रदाय

हमारे देश में ‘सम्प्रदाय’ विशेष काम करती

है। इसके कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। यदि किसी संप्रदाय के लोगों के किसी काम में थोड़ा-सा भी फर्क हो जाता है, तो उन्हें यही लगने लगता है कि बस, अब तो हमारा संप्रदाय मिट ही जायगा। देश में इसी तरह का एक गांधी-संप्रदाय भी है। वह मेरा यह कहना सहन नहीं कर पाया कि आज चर्खे का स्थान ग्रामदान को दिया जाय। इसी कारण वे लोग मुझसे कहने लगे कि ‘बापू ने तो सभी रचनात्मक कार्यों का मध्यबिन्दु चर्खा ही माना। किन्तु आप उसकी जगह ग्रामदान को मध्यबिन्दु बना रहे हैं, यह हमें पसंद नहीं है। भूदान, ग्रामदान को अधिक से अधिक आप रचनात्मक कामों में जोड़ देते, तो कोई हर्ज न था। आखिर त्रयोदशविध रचनात्मक कार्यक्रम अष्टादशविध हो ही गये और उनके सूचक होने के कारण बापू ने उन्हें उनमें समावेश करने की अनुमति भी दे दी थी। किन्तु चर्खे को मध्यबिन्दु से हटाकर ग्रामदान को वहाँ बिठाना कभी अच्छा नहीं कहा जायगा। इससे तो हम लोगों की प्रार्थना में क्रमभंग होता है। हमारी भक्ति को आँच लगती है। इसलिए हमें यह बिलकुल पसन्द नहीं।’ यह कहकर उन्होंने इसमें भाग लेने से इनकार कर दिया।

बेचारों को यह समझ में ही नहीं आ रहा था कि आखिर खुद मैं भी तीस वर्ष तक चर्खे की उपासना करता रहा, और भी कई उपासनाएँ करता था। तब क्या मैं इन सभी उपासनाओं का विच्छेद करके निकला हूँ? यदि वे अन्य भी कोई उपासना करने योग्य उदार हृदय रखकर विचार करते, तो कभी भी उनका ऐसा मनोभंग न होता। आखिर मैंने उन्हें समझाया—‘जरा विचार कीजिये! हम लोगों का काम ‘ऊर्ध्वमूलमधः-शाखम्’वाला ही चला है। याने हम लोग धीरे-धीरे जमीन पर पहुँच गये हैं। किन्तु अगर हम यह जमीन की बुनियाद ही भूल जायें, तो यह चर्खा भी कहाँ खड़ा रहेगा? क्या हवा में काता जायगा? चर्खा तो जमीन पर ही काता जाता है। इसलिए जमीन के सवाल को सर्वप्रथम मानकर स्वराज्य-प्राप्ति के बाद यदि हम उस ओर ध्यान न दें, तो समझ लीजिये कि मरने तक चर्खा कातने पर अधिक से अधिक लोग हमारी निष्ठा का बखान ही करेंगे। खुद मिल के कपड़े पहनने की अपनी निष्ठा पर अटल रहेंगे। वे कहेंगे कि इनकी निष्ठा ली जा सकती है और उसे लेते हैं—अनुकरण करते हैं, पर इनके कपड़े नहीं लेंगे।

फिर हम कितना ही प्रयत्न क्यों न करें, लोग आपके चर्खे को कभी न पूछेंगे। आज सारे एशिया में जमीन का सवाल अत्यन्त महत्त्व का है। अगर हम उसे टालकर, आँखों से ओझल कर, उससे कतरा कर दूसरी ही बातें लेकर बैठेंगे (फिर भले ही वह कितनी ही महत्त्व की क्यों न हो), तो लोकमानस में प्रवेश न पा सकेंगे। फिर वह चर्खे का एक संप्रदाय ही बन जायगा।

मजदूरी और मजबूरी की खादी

हम लोगों को बड़ी मुश्किल से खादी पहनवाते हैं। उन्हें चर्खा देते याने मजदूरी देते हैं। वे मजदूरी के लिए ही कातते हैं। कुछ तो मजदूरी मिले, इसलिए वे हमारी यह शर्त भी मान लेते हैं कि मजदूरी में चार आने की खादी और बारह आने नगद मिलेंगे। फिर वे उस खादी का जहाँ तक उपयोग हो सके, करते हैं और अधिक की गुंजाइश होने पर बेच भी देते हैं। फिर हम उनके शरीर पर खादी न देखें, यह कोई अच्छी बात नहीं।

अभी म्युनिसिपलिटी ने एक प्रस्ताव पास किया कि उसके नौकर, चपरासी आदि खादी पहनें। खादी म्युनिसिपलिटी की ओर से दी जायगी। लोग खादी पहनकर ही आयें। उन्हें लगा कि यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव है। मेरा अभिप्राय जानने के लिए म्युनिसिपलिटीवाले मेरे पास पहुँचे। मैंने उन्हें अपना अभिप्राय लिख भेजा कि 'मेरे मन में कुछ देर एक चित्र खड़ा हो गया। विदेशी कपड़ों से सजकर आये हुए अधिकारी के सामने ये खादीधारी चपरासी झुक-झुक कर प्रणाम कर रहे हैं। जब मैं यह चित्र अपने मनश्चक्षुओं के सामने रखता हूँ, तो मुझे अत्यन्त लज्जा आती है। उस अधिकारी को कपड़े के बारे में कुछ भी बन्धन नहीं और ये चपरासी उसे झुक-झुककर प्रणाम करें, इसका अर्थ यही होता है कि यह खादी उन विदेशी वखों के सामने सलाम करती है। यह चित्र बड़ा ही अप्रिय, खटकनेवाला, भयानक और अरुचिकर लगता है।' वे म्युनिसिपलिटीवाले मेरी बात की वास्तविकता समझ गये। समझने की बात है कि खादी की अपनी एक प्रतिष्ठा है और जो लोग सिर्फ मजदूरी के लिए कातते हैं, उसमें प्रतिष्ठा का भाव नहीं रहता। फिर भी यह अच्छा ही है कि हम लोग उन्हें कुछ कपड़ा देते हैं और वे पहनते हैं।

अभी मैंने सुना कि काठियावाड़ के किसी एक तालुके में खादी का काम अच्छा चल रहा है। इस पर से मैं यह पूछ बैठा कि उस तालुके में कितने खादीधारी होंगे? मुझे जवाब मिला—पाँच सौ खादीधारी होंगे और पचीस सौ या तीन हजार कातनेवाले, जिनमें अधिकतर बहनें ही हैं। इस तरह तीन हजार विवशता से पहननेवाले और पाँच सौ अपनी मर्जी से पहननेवाले हैं। खादी का आन्दोलन सन् १९१८ से शुरू हुआ है। इस तरह आज चालीस वर्ष बाद और सरकारी मदद के रहते एक तालुके में यह बहुत काम हुआ माना जाता है। दूसरे तालुकों के लिए यह आदर्श काम माना जाता है। अब आप इसका त्रैशिक कीजिये कि अगर एक तालुके में इतने काम के लिए इतने वर्ष लगे, तो पूरे प्रदेश में और पूरे देश में सभी खादीधारी होते-होते कितना समय लग जायगा। क्या इसका गणित हो सकता है? इसलिए स्पष्ट है कि यह एक हारी हुई बाजी है। यदि हम भूमि के सवाल की उपेक्षा कर यह काम करेंगे, तो चल नहीं सकता। मैं कहना चाहता हूँ कि जब तक देश में बेकारी रहेगी, कांग्रेस ही नहीं, दूसरी भी कोई सरकार, जो दूसरी तरह से बेकारी न मिटा सकती हो, इसे थोड़ी मदद देगी,

इसमें कोई कठिनाई नहीं। इस तरह जब बेकारी-निवारण के अन्य साधन नहीं मिल पाते, तब यह बेकारी मिटाने का एक अवशिष्ट अधिकार माना जाता है। जब तक बेकारी रहेगी, तब तक खादी को थोड़ी-बहुत मदद मिलेगी और कुछ लोग कातते भी रहेंगे। इस तरह थोड़ी-सी खादी टिकेगी।

मैं समझता हूँ कि इतनी खादी तो अमेरिका में भी चल सकती है। अगर लोग हाथ के फैन्सी सूत की खादी कहकर उन्हें फैन्सी बाजार में ले आते हैं, तो फैन्सी मूल्य भी मिल सकता है। लोग उन्हें खरीद भी सकते हैं। इस तरह हस्तकला के तौर पर खादी चल सकती है, नैष्टिक उपासना के तौर पर चल सकती है और चलती ही है। आज बिजली आ गयी, फिर भी घी के दीपक की पुरानी प्रथा मिट नहीं गयी। पवित्रता का ध्यान रखकर पवित्र स्थानों में आज भी गाय के घी के दिये जलाये जाते हैं। जब तक वह धार्मिक भावना बनी रहेगी, तब तक यह चलता ही रहेगा। इसी तरह यदि हम चर्खे का संप्रदाय ही चलाना चाहें, तो उसे सहज ही चला सकते हैं। हिन्दुस्तान में जैसे अन्य संप्रदाय चले, उसी तरह यह भी एक संप्रदाय चलता रहेगा। लेकिन चर्खे का यह दावा नहीं है।

चर्खा क्रान्ति का प्रतीक

हमारा यह चर्खा क्रान्ति की निशानी है, क्रान्ति का प्रतीक है। इसके सामने हम सारी दुनिया में व्याप्त मिलवाली योजना के विरोध में खड़े रहते हैं। यह एक बहुत बड़ी क्रान्ति है। किंतु इसका आधार मैं ग्रामदान के सिवा दूसरा कोई भी नहीं देखता। अगर ग्राम-संकल्प हो और गाँववाले निश्चय करें कि कुछ ही समय के लिए दस-पंद्रह वर्षों में सभी मिलें बन्द कर चर्खे लाये जायेंगे, तभी कहा जा सकता है कि खादी को संरक्षण मिला और वह व्यापक हो जायगी। इस तरह या तो सरकार का संरक्षण मिलना चाहिए या लोगों का संरक्षण। तभी वह टिक सकेगी, व्यापक हो सकेगी। दोनों में से एक भी संरक्षण न मिला, तो उसका टिक पाना बहुत कठिन है किन्तु यह समझ लेना चाहिए कि यह तो खादी की निकासी का ही निश्चय हो गया है। जैसे घर में कोई अतिथि आये और दो-तीन दिन रहे, तो भी उसका जाने का निश्चय हुआ ही रहता है। वह घर का मालिक नहीं होता। उसी बीच अगर वह बीमार पड़ जाता है, तो घरवाला उससे कहेगा कि 'भाई, चार-छह दिन रह जाओ।' इसी तरह आज हमारा देश बीमार पड़ा है, इसीलिए सरकारवाले कहते हैं कि अभी खादी पाँच-सात वर्ष और चलेगी, क्योंकि बेकारी-निवारण के लिए आज दूसरा साधन नहीं मिलता। इस तरह हमारा यह चर्खा सन् १९१८ में यहाँ आया और १९५८ तक रहा। और भी दस-बीस वर्ष भले ही रह जाय। फिर भी इसकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय तीनों निश्चित ही हैं।

किन्तु यदि हम यह चाहते हों कि जिस तरह खेती का काम आने के बाद फिर वापस कभी नहीं जाता, उसी तरह चर्खा भी आये और सदैव बना रहे, तो इसका खेती के साथ संबंध जोड़ना ही पड़ेगा। एक बार एक गाँव के बुनकरों के साथ मेरी बातचीत हुई। मैंने उनसे कहा कि यदि आप लोग यह मानें कि किसानों की दशा चाहे जैसी रहे, हमारा स्तर ऊँचा होना चाहिए, तो वे किसान भी आपका कपड़ा खरीदने के लिए बँधे न रहेंगे। वे बाजार से ही सस्ता कपड़ा खरीदेंगे और फिर आपको भी सरकार जो भाव तय करे, उसी भाव पर कपड़ा बेचना होगा। यह भली भाँति ध्यान में रखें। सौभाग्य की बात है कि यह बात उनके ध्यान में आ गयी। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि आपको

यूनियन बनाना हो, तो भी किसान-बुनकर यूनियन ही बनाना चाहिए, तभी हाथ का बुना कपड़ा टिक पायेगा। मैं कहना चाहता हूँ कि यहाँ की रचनात्मक समिति के लोग व्यवस्थित ढंग से काम करते हैं। जो कुछ काम चलता है, वह बहुत ही कम और नहीं के बराबर है। पर इसे मैं विशेष महत्त्व नहीं देता, बल्कि ये लोग जिस भाव से काम करते हैं, उसे ही विशेष महत्त्व देता हूँ। ये लोग बहुत सद्भाव से इस काम को पकड़ कर बैठे हैं, इसे छोड़ते नहीं। इसलिए इनकी इस धृति की मैं प्रशंसा ही करता हूँ। ऐसे ही निश्चय के साथ अब हमें ग्रामदान को प्रधान स्थान देकर आगे काम करना चाहिए। अगर आप लोग यह समझ जाते हैं, तो बहुत अच्छा होगा।

जब कि ग्रामदान होगा

कई लोग ऐसा मानते हैं कि यहाँ तो ग्रामदान होंगे ही नहीं। अभी-अभी आपके नारायणदास भाई ने मुझे एक सुन्दर पत्र लिखा है। उसमें वे विनोद में लिखते हैं कि आप सौराष्ट्र में आग्रह छोड़कर आते हैं, यह बहुत अच्छा है। इससे सभीको बहुत लाभ होगा। अगर आप आग्रह रखकर आते, तो भी सौराष्ट्र में ग्रामदान मिलते, ऐसी बात नहीं। इसलिए आपने यह बड़ी बुद्धिमानी का काम किया कि आग्रह छोड़कर आ रहे हैं। आखिर उन्होंने तो विनोद ही किया है, किन्तु मैं कहना चाहता हूँ कि पूरे सौराष्ट्र के सभी गाँवों में जब ग्रामदान होंगे, तभी वे जी सकेंगे, अन्यथा नहीं। आप मेरा यह वाक्य डायरी में लिख रखिये कि 'हमारे देश के गाँव तभी जी सकते हैं, जब कि उनका ग्रामदान होगा।' यह सर्वथा सुनिश्चित है।

आज तो गाँवों का शोषण ही चल रहा है। गाँवों की श्रम और बुद्धि दोनों शक्तियाँ गाँवों से बाहर जाना चाह रही हैं। यदि ये गाँवों में न रहीं, तो गाँव के भूमिहीनों की गाँवों में कोई चिन्ता ही न की जायगी। जब ये दोनों शक्तियाँ गाँव छोड़कर शहरों में चली जायँगी, तो क्या फिर गाँव का शोषण नहीं होगा? आज गाँवों में जो शिक्षण चलता है, उसे देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है। सभी कहते हैं:—स्कूल खोलो, स्कूल खोलो। आखिर इसका अर्थ क्या है? किसान अपने बच्चे को स्कूलों में भरती कर यह आशा करता है कि आज उसे जो रही काम करना पड़ता है, उससे उसका लड़का छुटकारा पा जाय। याने स्कूल खेती आदि के श्रम से छुटकारा पाने का साधन माना जाता है। लड़का कुछ अधिक पढ़ जाय, तो गाँव छोड़कर शहर में चला जाता है। इस तरह जब बुद्धि और श्रम-शक्ति का शोषण चल रहा हो, तो गाँव कैसे टिक पायेंगे?

आज गाँवों में एक तीसरी भी शक्ति है। वह प्रेम-शक्ति कही जाती है। उसीके सहारे गाँव टिके हुए हैं। अगर प्रेम खतम हो जाय, तो गाँव टिक नहीं सकते। लेकिन यह प्रेम कब तक टिका रहेगा? अगर यह बुद्धि और श्रम गाँव से बाहर जाते रहेंगे, तो वहाँ श्रम करनेवाले कम रह जायँगे, जिससे वे एक-दूसरे के साथ मत्सर करते रहेंगे। फलतः प्रेम खंडित हो जायगा। फिर चुनाववाले गाँव में आकर आग लगा जाते ही हैं, उन्हें बुझानेवाला श्रीकृष्ण कहीं दिखाई नहीं पड़ता। इसी तरह चलता रहा, तो गाँव भग्न हो जायँगे। यदि गाँव को साबूत रखना है, तो वहाँ बुद्धि-शक्ति और श्रम-शक्ति का संग्रह होना ही चाहिए। यदि हम ऐसा करना चाहते हों, तो ग्रामदान के सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं।

बहुतों को ग्रामदान में भय लगता है। मैं उन्हें समझाता रहता हूँ कि ग्रामदान जैसी दूसरी कोई निर्भय वस्तु नहीं। जिस तरह सरदार ने बड़े-बड़े राजा-सहाराजाओं को प्रेमपूर्वक मुक्ति दी,

उसी तरह हम भी गाँव की मालकियत को मुक्ति दे दें। जब कोई पुरानी प्रथा, जिसके प्रति लोगों में आदर रहता है, मिटानी होती है, तो उसे प्रेम और आदरपूर्वक ही निकलना चाहिए, अनादर-पूर्वक नहीं। बड़े-बड़े मालिकों ने जंगल काटकर गाँव बसाये और उन्हें कुछ मिला भी। एक जमाने में इनके लिए यह आदर का विषय था। किन्तु आज उसे हम मिटाना चाहते हैं, तो प्रेम और आदरपूर्वक ही उसे मिटाना चाहिए। मैं समझता हूँ कि यदि हम लोगों को इस प्रकार समझायें, तो सभी समझ जायँगे। इन बड़े लोगों में दो वर्ग हुआ करते हैं। कुछ करुणावान या दयावान होते हैं, तो कुछ बुद्धिमान। ऐसे कोई बड़े लोग नहीं होते, जो दयावान न हों और न बुद्धिमान ही हों। जो करुणावान हों, उन्हें हम समझा सकते हैं कि ग्रामदान में अत्यधिक करुणा है और बुद्धिमानों को समझा सकते हैं कि ग्रामदान करने में ही बुद्धिमानी है।

क्रान्ति या राहत ?

मैं चाहता हूँ कि यहाँ की रचनात्मक समिति अपने चर्खे और ग्रामोद्योग का कार्यक्रम पूर्ण करने तथा उसे क्रान्तिकारक रूप देने को तैयार हो, तभी ये टिक सकते हैं। वह समझें कि यह राहत का काम नहीं है। क्रान्ति में भी राहत मिलती है, पर राहत में क्रान्ति नहीं। इसलिए चर्खा, घानी आदि का काम क्रान्तिकारक होना चाहिए। इसके लिए हमें बुद्धिमानी के साथ अपने काम की नींव ग्रामदान पर रखने की हिम्मत करनी होगी। मैं यह चाहता हूँ कि रचनात्मक समिति और उसके कार्यकर्ता अपना चिन्तनसर्वस्व इसमें लगायें और इसके परिणामस्वरूप सारा सौराष्ट्र ग्रामदानमय हो जाय। सभी यह कहने लग जायँ कि सौराष्ट्र के लिए यह बहुत ही सरल है, क्योंकि यहाँ जिस तरह पंचायत का आरंभ किया है और जिस तरह यहाँ लोगों को समझाकर भूमि-सुधार किया गया, वह बहुत ही अच्छा प्रकार रहा है। इसी प्रकार जहाँ तक हो सके, ग्रामदान उसीके आगे का विकास है, यह समझकर उसे लोगों के गले उतार सकते हैं, ऐसा मुझे लगता है।

खादीवाले भी भूदान की राजनीति अपनायें !

दूसरी एक बात और कह देना चाहता हूँ। बहुतों के मन में यह भावना रहती है कि भूदानवाले और कांग्रेसवालों के बीच भी अन्दर से कुछ भेद रहता है। यह भेद बहुत मामूली होता है। पर इसमें एकदम तीव्रता आ जाती है। जब मतभेद बढ़ा और व्यापक होता है, तो उससे उतनी तीव्रता नहीं आती। अतः मैं कहना चाहता हूँ कि भूदान और ग्रामदान की राजनीति के साथ जो वृत्ति है, वही वृत्ति खादी-ग्रामोद्योगवालों को भी अपनानी चाहिए। इसमें राजनीतिवाले आना चाहें, तो जरूर आयें, क्योंकि हम यही चाहते हैं कि सभी इसमें आयें। क्या हम कभी ऐसा कहते हैं कि अमुक लोग कुछ पापी हैं, इसलिए इसमें न आयें? याने जब हम पापियों को भी अपने यहाँ निमंत्रण देते हैं, तो पुण्यवानों को भी आने का अधिकार है ही। जो पुण्यवान लोग सत्ता की राजनीति के द्वारा सेवा करने की वृष्णा रखते हों, वे इसमें न आयें, ऐसा कैसे चाह सकते हैं? अर्थात् सभी इसमें आयें, पर किस तरह? अभी हम लोग प्रार्थना में बैठे थे। उसमें कोई किसी जाति का था, तो कोई किसी जाति का। कोई किसी पक्ष का था, तो कोई किसी पक्ष का। लेकिन प्रार्थना में सभी अपने-अपने पक्ष और जातियाँ छोड़कर आये थे। प्रार्थना में आते समय सभी अपने-अपने जूते बाहर निकाल कर आते हैं, फिर भले ही कोई बूट पहना हो या चप्पल, इसका कुछ सवाल

ही नहीं रहता। प्रार्थना में दूसरा, तीसरा कोई भी भेद नहीं रहता। इसी तरह इस काम में भी एकमात्र सात्त्विकता आनी चाहिए। राजस, तामस विचार भले ही अन्यत्र चलते रहें, लेकिन यहाँ न चलें। उन विचारों को भी एकदम मिटाया नहीं जा सकता, लेकिन सात्त्विक क्षेत्र में उनका प्रवेश न हो पाये, इसकी सावधानी अवश्य रखी जाय। हमारे लिए इतना को काफी है।

इस प्रकार भूदानवाले और खादीवाले दोनों पक्षमुक्त हों। मैं जो यह कह रहा हूँ, उसकी समझ धीरे-धीरे आयेगी। लेकिन जब तक वह ध्यान में न आये, तब तक पक्षवाले भी इसमें आयें, तो उनके प्रति विश्वास रखकर उन्हें इसमें लिया जा सकता है। भले ही वे पक्ष की मनोवृत्ति लेकर हमारे यहाँ आयें। लेकिन इस काम में इतनी पवित्रता होनी चाहिए कि उसका रंग उनपर चढ़ जाय, उनका रंग हम पर न चढ़े। नहीं तो भूदान-कार्यकर्ता भी एक प्रकार से विरोधी राजनीतिज्ञ हो जायेंगे। जैसे कि अन्य राजनीतिज्ञ हुआ करते हैं। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि रजोगुण का अति तीव्र विरोध करेंगे, तो रजोगुणी ही हो जायेंगे और तमोगुण का अतितीव्र विरोध करेंगे, तो तमोगुणी ही होंगे। इसी तरह जो व्यक्ति यह सोच-सोच कर कि यह अमुक पार्टी का, यह अमुक पार्टी का काम करता है, वह भी एक पार्टी का ही आदमी बन जाता है। हमें ऐसा नहीं बनना है कि हम ऐसी पार्टी के हैं, जिसमें किसी भी पक्ष को जोड़ा नहीं जा सकता। यह तो एक समुद्र जैसा है। जैसे समुद्र में सभी नदियाँ आ मिलती हैं, वैसे ही सभी पक्ष हममें आ मिलें। किन्तु एक बात ध्यान देने की है। सभी नदियाँ अपनी-अपनी मली-नंता के साथ समुद्र से आ मिलती हैं और क्षार समुद्र उन्हें अपने में समा लेता है। किन्तु हम खादी-प्रामोद्योग या प्रामदान को क्षार बनाना नहीं चाहते। इसलिए इसमें नदियाँ फिल्टर होकर ही आयें। यदि हम इतना ध्यान दें, तो हमारा काम चल जायगा।

ऐसी वृत्ति भूदान-कार्यकर्ताओं को तो रखनी ही चाहिए। अन्य कार्यकर्ता भी ऐसी ही वृत्ति रखें। भूदान, प्रामदान और खादी आदि काम में जो लोग आयें, वे भी इसमें आने के बाद ऐसी ही वृत्ति रखें। वे ऐसी ही वृत्ति लेकर आयें और एक साथ मिलकर काम करें। फिर परिचय से एक-दूसरे के प्रति जो भी गलत-फहमी रही हो, वह कम होती जायगी। गत सात वर्षों से मैं यही कर रहा हूँ। मेरे कितने ही भाई अपने अन्तर में मेरे प्रति ओर एक तो पूर्ण आदर, तो दूसरे किसी कोने में कुछ गलतफहमी भी रखते हैं। लेकिन जब भेंट होती है, तो वे समझ जाते हैं कि नाहक ही हम गलतफहमी में रहे। उन्हें ऐसी गलतफहमी इसीलिए होती है कि वे शब्द का ज्ञान नहीं रखते और मुझे वह इसलिए नहीं होती कि मैंने बचपन से शब्द-शक्ति की उपासना की है, मैं शब्द को जानता हूँ। जब कोई सूक्ष्म शब्द बोला जाता है, तो स्थूल भाषा समझनेवाले लोग उसे समझ नहीं पाते। अतएव गलत-फहमी कर बैठते हैं। बहुत से लोग मेरे साथ दो-चार दिन घूमते हैं, तो मेरा हृदय उनकी समझ में आ जाता है। इसीलिए शास्त्रों में लिखा है कि 'सतां सप्तपदं मैत्र्यम्' सज्जनों के साथ सात कदम चलें, तो मित्रता हो जाती है। इसीलिए विवाह में वर वधू का हाथ पकड़कर सात कदम धरता है। आप

सभी गांधी-विचार रखनेवाले सज्जन हैं और मैं भी उन्हींका विचार रखनेवाला सज्जन हूँ। इसलिए हम दोनों सात कदम साथ चलें, तो दोनों में सख्य हो जायगा।

पुराने-नये का योग

भाइयो! मैं आपका हूँ और आप मेरे हैं। ये भूदान-कार्यकर्ता तो नये हैं। नये लड़कों में और पुराने बूढ़ों में मतभेद हो सकता है, पर उसे हमें संभाल लेना चाहिए। उन्हें समझाने का प्रयत्न करना और संभालना ही होता है। यह अवस्था ही ऐसी होती है कि मानव उतावली में कुछ कर जाता है। लेकिन अनुभवी लोगों का कर्तव्य है कि उसे सहन कर उन्हें अपने में समा लेना चाहिए। मैंने कई बार कहा है कि पुराने लोग धनुष और नये लोग तीर जैसे हैं। एक-दूसरे के बिना एक-दूसरे की जो दशा होगी, वही नये-पुराने की होगी। अतः इन दोनों का योग साधना चाहिए। मेरा प्रयत्न इसी ओर चल रहा है। मुझे विश्वास है कि यदि आप सौराष्ट्र में यह प्रयत्न करें, तो निश्चित ही सफल होंगे।

कोई प्रामाणिक व्यक्ति हो और सब कुछ खोलकर रख देता हो, फिर भी उसके शब्द उसके अन्तर की पूरी की पूरी भावना व्यक्त कर देते हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। फिर परस्पर थोड़ी गलत-फहमी रह जाय, तो वह साथ काम करते-करते कम हो जाती है। फिर भी यदि थोड़ी बहुत रह ही जाय, तो उससे जीवन में रस ही बढ़ता है, यही समझकर बना रहने दिया जाय। उससे कोई हर्ज नहीं। अतः आप सभी एक होकर यह काम उठा लें और मुझे निश्चित कर यहाँ से बिदा दें। भूदान-कार्यकर्ता और रचनात्मक कार्यकर्ता यह भेद न रखें। सभी एकरस होकर काम करें।

◆◆◆

जहाँ गन्दगी रहती है, वहाँ परमेश्वर नहीं रहता। पर जहाँ स्वच्छता रहती है, वहीं वह प्रकट होता है।

जहाँ द्वेष-मत्सर होता है, वहाँ परमेश्वर प्रकट नहीं होता, पर जहाँ प्रेम होता है, वहाँ उसका साक्षात्कार कर सकते हैं।

प्रेमपूर्वक एक साथ रहनेवालों के पास परमेश्वर रहता है, ऐसा तत्त्वज्ञानी कहते हैं। वैसे तो परमेश्वर सर्वत्र रहता है, किन्तु दीखता नहीं। विजली घर में आ जाय, फिर भी हम बटन न दबायें, तो क्या अन्धकार मिटेगा? उस अप्रकट परमेश्वर को कैसे पहचाना जाय? इसकी युक्ति है—सत्य, प्रेम, करुणा।

◆◆◆

अनुक्रम

१. हमारे रचनात्मक कार्य क्रान्ति की गंगा...

राजकोट २२ नवम्बर '५८ पृष्ठ ३०६